E-ISSN: 2706-9117
P-ISSN: 2706-9109
www.historyjournal.net
IJH 2025; 7(7): 14-18
Received: 17-04-2025
Accepted: 20-05-2025

ऋतु
सहायक प्रवक्ता, इतिहास विभाग, इंदिरा गांधी विश्वविद्यालय, मीरपुर, रेवाड़ी, हरियाणा, भारत

Corresponding Author:
ऋतु
सहायक प्रवक्ता, इतिहास विभाग, इंदिरा गांधी विश्वविद्यालय, मीरपुर, रेवाड़ी, हरियाणा, भारत

विनायक दामोदर सावरकर का सामाजिक ऐवम राजनीतिक चिंतन और भारतीय समाज में उनका महत्व: ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में विवेचना

ऋतु

DOI: https://www.doi.org/10.22271/27069109.2025.v7.i7a.455

सारांश

यह शोध-पत्र वीर विनायक दामोदर सावरकर के सामाजिक एवं राजनैतिक विचारों की विवेचना करता है। सावरकर स्वतंत्रता संग्राम के एक क्रांतिकारी नेता होने के साथ-साथ एक विचारक, लेखक, और हिंदुत्व के वैचारिक स्तंभ माने जाते हैं। इस शोध में उनके सामाजिक सुधारों, जातिवाद विरोध, अस्पृश्यता के विरुद्ध संघर्ष, साथ ही उनके राष्ट्रवाद, हिंदुत्व, और स्वराज्य संबंधी दृष्टिकोणों का विश्लेषण किया गया है। इस शोध का उद्देश्य उनके दर्शन की समकालीन प्रासंगिकता को भी समझना है। विनायक दामोदर सावरकर एक जटिल, दूरदर्शी और साहसी राजनीतिक विचारक थे, जिनके विचारों को पारंपरिक वैचारिक श्रेणियों में बांधना कठिन है। वे न तो उदारवादी थे, न ही समाजवादी, और किसी एक विचारधारा के अनुयायी भी नहीं थे। उन्होंने धार्मिक ग्रंथों की आलोचनात्मक समीक्षा को आवश्यक माना और धर्म का प्रयोग सामाजिक उद्देश्यों की पूर्ति के लिए किया। वे तर्कवाद, वैज्ञानिक भौतिकवाद और मानवतावाद से प्रभावित थे, और उनके विचारों को अक्सर परंपरावादियों ने उग्र तथा मध्यमार्गियों ने अतिवादी समझा। सावरकर ने "सांस्कृतिक राष्ट्रवाद" का सिद्धांत प्रतिपादित किया, जो उस समय के "भौगोलिक राष्ट्रवाद" के विचार से भिन्न था। उनके अनुसार, संस्कृति मानव द्वारा रचित होती है और वह राष्ट्र की विचारधारा, आचार और पराक्रम का प्रतीक होती है। उनका राजनीतिक लक्ष्य भारत की पूर्ण स्वतंत्रता था, जिसे उन्होंने मानवता के व्यापक हित से जोड़ा। उन्होंने 'हिंदुत्व' की अवधारणा प्रस्तुत की, जो हिंदू पुनरुत्थानवादी आंदोलनों से प्रेरित थी। हिंदुत्व को उन्होंने एक सांस्कृतिक और राजनीतिक पहचान के रूप में परिभाषित किया, जिसमें एक व्यक्ति हिंदू तभी कहलाएगा जब वह भारतभूमि को अपनी पितृभूमि और पुण्यभूमि माने। सावरकर की दृष्टि में "हिंदू राष्ट्र" का निर्माण उन लोगों के माध्यम से संभव है जो सांस्कृतिक, धार्मिक, भाषायी और ऐतिहासिक रूप से एकसूत्र में बंधे हुए हों। उन्होंने भारत में हिंदू एकता को राष्ट्र निर्माण का आधार माना और हिंदुत्व को इस प्रक्रिया की केंद्रीय अवधारणा के रूप में स्थापित किया।

कुटशब्द: रोटीबंदी, बेटीबंदी, स्पर्शबंदी, व्यवसायबंदी, सागरबंदी, वेदोक्तबंदी और शुद्धिबंदी, उपयोगितावाद, मानवतावाद

प्रस्तावना

विनायक दामोदर सावरकर एक यथार्थवादी चिंतक और दूरदर्शी राजनेता थे, जिनकी दृष्टि समय की सीमाओं से परे थी। उनका रोम-रोम राष्ट्र को समर्पित था। वे अखंड भारत के प्रबल समर्थक और पक्षधर थे। अपनी प्रखर बुद्धि, तार्किक शक्ति और तथ्यपरक विश्लेषण के बल पर उन्होंने 1857 के विद्रोह को 'प्रथम स्वतंत्रता संग्राम' के रूप में मान्यता दिलवाई। अस्पृश्यता निवारण की दिशा में उन्होंने ठोस और निर्णायक पहल करते हुए रत्नागिरी में 'पतित पावन मंदिर' की स्थापना की, जहाँ सभी जातियों के हिंदुओं को प्रवेश की अनुमति थी। सावरकर ने समाज को रोटीबंदी, बेटीबंदी, स्पर्शबंदी, व्यवसायबंदी, सागरबंदी, वेदोक्तबंदी और शुद्धिबंदी — इन सात सामाजिक बेड़ियों से मुक्त कराने के लिए अभिनव प्रयोग किए और साहसिक प्रयास किए। उन्होंने धर्मांतरित लोगों को उनके मूल धर्म में वापस लाने के लिए एक सशक्त 'घर-वापसी आंदोलन' भी चलाया। समाज-सुधार के कार्यों में वे जीवन भर संलग्न रहे और जातिगत विषमता के उन्मूलन के लिए निरंतर संघर्ष करते रहे। तत्कालीन प्रमुख राष्ट्रीय नेताओं में सावरकर का विशेष सम्मान था। महात्मा गांधी, डॉ. भीमराव आंबेडकर और नेताजी सुभाषचंद्र बोस जैसे प्रभावशाली और प्रखर नेताओं ने समय-समय पर वीर सावरकर के विचारों और योगदान की सराहना की है।

28 मई 1883 को महाराष्ट्र के नासिक जिले के भगूर गाँव में जन्मे विनायक दामोदर सावरकर बचपन से ही वीरता और राष्ट्रभक्ति के संस्कारों से ओत-प्रोत थे। उनके माता-पिता, दामोदर पंत और राधाबाई ने उनमें भारतीय संस्कृति पर गर्व और ब्रिटिश राज के खिलाफ विद्रोह की भावना को बचपन से ही जाग्रत किया। सावरकर पर बाल गंगाधर तिलक के विचारों का गहरा प्रभाव था। 1857 के स्वतंत्रता संग्राम की कहानियों ने उनके मन में अंग्रेज़ों के विरुद्ध विद्रोह की भावना और गहरा दी। सावरकर ने अपनी उच्च शिक्षा पुणे के प्रतिष्ठित फर्ग्यूसन कॉलेज से पूरी की, जहाँ से उन्होंने कला में स्नातक की डिग्री प्राप्त की तथा पढ़ाई के साथ-साथ वे राष्ट्रवादी विचारधारा से भी सक्रिय रूप से जुड़ते गए। इसी दौरान उन्होंने युवाओं में देशभक्ति और एकजुटता की भावना विकसित करने के उद्देश्य से "मित्र मेला" नामक छात्र संगठन की स्थापना की जिसका उद्देश्य

युवाओं में राष्ट्रभक्ति की भावना जाग्रत करना था। कविता पाठ, इतिहास चर्चा और शारीरिक प्रशिक्षण के माध्यम से यह संगठन अंग्रेज़ों के विरुद्ध युवाओं को तैयार करता था। आगे चलकर यह "अभिनव भारत सोसायटी" के रूप में एक संगठित और एक क्रांतिकारी संस्था में परिवर्तित हो गया। इस संस्था का मुख्य उद्देश्य भारतीयों को ब्रिटिश शासन के विरुद्ध सशस्त्र संघर्ष के लिए प्रेरित करना था। 1906 में सावरकर को कानून की पढ़ाई के लिए छात्रवृत्ति मिली, जिसके तहत वे लंदन गए। परंतु उनका उद्देश्य केवल शैक्षणिक नहीं था, वे भारत की स्वतंत्रता को ही अपना सर्वोच्च लक्ष्य मानते रहे। लंदन में वे इंडिया हाउस से जुड़े, जो वहाँ रहने वाले भारतीय छात्रों का छात्रावास था और साथ ही क्रांतिकारी गतिविधियों का केंद्र भी। उन्होंने ब्रिटिश शासन के खिलाफ सशस्त्र क्रांति के लिए क्रांतिकारियों का एक संगठन बनाया जिसका नाम रखा गया "फ्री इंडिया सोसाइटी", जिसका उद्देश्य भारत की स्वतंत्रता के लिए अंतरराष्ट्रीय समर्थन जुटाना था। यहीं पर उन्होंने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक "इंडियन वॉर ऑफ इंडिपेंडेंस 1857" लिखी, जिसमें 1857 के विद्रोह को एक मात्र सैनिक बगावत नहीं, बल्कि एक राष्ट्रीय स्वतंत्रता संग्राम के रूप में प्रस्तुत किया गया। यह पुस्तक ब्रिटिश सरकार द्वारा प्रतिबंधित कर दी गई लेकिन भारत में गुप्त रूप से फैलाई गई और इस पुस्तक ने अनेक युवाओं को प्रेरणा दी। लंदन में रहते हुए सावरकर ने अपने राजनीतिक कार्यों को जारी रखा। वर्ष 1909 में उन्हें ब्रिटिश अधिकारी ए.एम.टी. जैक्सन की हत्या की साजिश में कथित रूप से शामिल होने के आरोप में गिरफ्तार कर लिया गया।[1] परन्तु 8 जुलाई 1910 को एम॰एस॰ मोरिया नामक जहाज से जन उनको लंदन से भारत लाया जा रहा था तो वह वहाँ से भागने मे कामयाब हो गए। 24 दिसम्बर 1910 को उन्हें आजीवन कारावास की सजा दी गयी। इसके बाद 31 जनवरी 1911 को इन्हें दोबारा आजीवन कारावास दिया गया और अंडमान की कुख्यात सेलुलर जेल (काला पानी) में भेज दिया गया। इस प्रकार सावरकर को ब्रिटिश सरकार ने क्रान्ति कार्यों के लिए दो-दो आजन्म कारावास की सजा दी, जो विश्व के इतिहास की पहली एवं अनोखी सजा थी। सावरकर के अनुसार – *मातृभूमि! तेरे चरणों में पहले ही मैं अपना मन अर्पित कर चुका हूँ। देश-सेवा ही ईश्वर-सेवा है, यह मानकर मैंने तेरी सेवा के माध्यम से भगवान की सेवा की।*[2] वहाँ उन्होंने वर्षों तक अमानवीय यातनाओं का सामना किया, लेकिन फिर भी देश के प्रति उनकी निष्ठा और संकल्प कमजोर नहीं पड़ा। जेल में रहते हुए उन्होंने कविताएँ और लेखन के माध्यम से अपने विचारों को जीवित रखा। सावरकर ने अंदमान कारागार में होनेवाले अमानवीय अत्याचारों की सूचना किसी प्रकार भारत के समाचारपत्रो में प्रकाशित कराने में सफलता प्राप्त कर ली। इससे पूरे देश में इन अत्याचारों के विरोध में प्रबल आवाज उठी। जाँच समिति ने अंदमान जाकर जाँच की। अंत में दस वर्ष बाद मई 1921 में सावरकरजी को अंदमान से मुक्ति मिली। उन्हें अंदमान से लाकर रत्नागिरि तथा यरवदा को जेलों में बंद रखा गया। तीन वर्षों तक इन जेलों में रखने के बाद सन् 1924 में उन्हे रत्नागिरि में नजरबंद रखने के आदेश हुए। रत्नगिरि में रहकर उन्होंने अस्पृश्यता निवारण, हिंदू संगठन जैसे अनूठे कार्य किए। 'हिंदुत्व', "हिंदू पदपादशाही', ' उ: श्राप ' उत्तरक्रिया', ' संन्यस्त खड्ग' आदि ग्रंथ उन्होंने रत्नागिरि में ही लिखे।[3] 10 मई, 1937 को सावरकरजी की नजरबंदी रद्द की गई। 1924 से 1937 तक का समय सावरकर के जीवन में सामाजिक क्रांति और पुनरुत्थान का काल रहा, जहाँ उन्होंने भारतीय समाज को एकजुट करने, वैज्ञानिक चेतना फैलाने और जातिगत भेदभाव को मिटाने की दिशा में ऐतिहासिक योगदान दिया।[4]

सामाजिक दर्शन

सावरकर सामाजिक सुधारों के जिस लक्ष्य की ओर अग्रसर थे वह था मानवता, न्याय, मुक्ति, समानता तथा बंधुत्व का निर्माण। उनका मानना था की जितनी आवश्यकता हमे विदेशी शासन से मुक्ति की है उतनी ही आवश्यकता सामाजिक सुधारों की भी है।[5] हम उन्हे समाज सुधारक नहीं कह सकते वो एक सामाजिक क्रांतिकारी थे।[6] उनका मानना था 'जन्मना जायते हिन्दूहु' ('प्रत्येक व्यक्ति जन्म से हिन्दू है')! वास्तव में, प्रत्येक मनुष्य की जन्म के समय केवल एक ही जाति होती है – मानव."।[7] सावरकर के अनुसार वास्तव मे हिन्दू समाज के अंतर्गत तथाकथित जातिभेद वास्तव मे जन्मजात नहीं है अपितु पोथी जात अर्थात माना हुआ है। सावरकर ने जाति प्रथा को भारत की सामाजिक एकता के लिए एक बड़ी बाधा माना। उन्होंने वर्ण व्यवस्था के आधार पर जातियों की असमानता का विरोध किया और जातिगत भेदभाव को खत्म करने का आग्रह किया। उनका मानना था की जाति प्रथा तथा वर्ण व्यवस्था अपने शुरुआती समय मे अच्छाइयों के साथ उपयोगी रही होंगी परंतु वर्तमान संदर्भ मे उनकी उपयोगिता शून्य हो गई है। डॉ अंबेडकर की ही तरह सावरकर भी मानते थे की हिन्दू धर्म शास्त्रों का ऐतिहासिक महत्व था, किन्तु नई सामाजिक व्यवस्था मे उनका कोई उपयोग नहीं है।[8] उन्होंने माना हिंदू समाज का सामाजिक ताना-बाना सात जातिगत बेड़ियों में बंधा था। ये सात बेड़िया कुछ इस प्रकार है:

1. **वेदोक्तबंदी:** सावरकर के अनुसार यह पहली बेडी थी जिसका टूटना अत्यंत आवश्यक था। उनके अनुसार सभी हिन्दुओ का वेदो या अन्य धर्म ग्रन्थों पर समान अधिकार होना चाहिए। वेदों का अध्ययन या वेदोक्त संस्कार, जिसकी इच्छा हो उसे करना चाहिए। वेद आदि ग्रंथ सारी मानवजाति के लिए खुलने चाहिए, क्योंकि वेदों से ही समस्त मानवजाति का कल्याण संभव है।[9]
2. **व्यवसायबंदी:** यह दूसरी बेड़ी है जो तोड़नी चाहिए | कोई भी व्यक्ति जिस काम को करने मे सक्षम हो या उस काम को करने की इच्छा रखता हो उसे वह काम करने की छूट होनी चाहिए। किसी व्यक्ति को कोई काम करने से जातिगत आधार पर नहीं रोक जाना चाहिए। अमुक पोथीजात जाति में जनमा इसलिए वह वही व्यवसाय करे, नहीं तो वह जाति-बहिष्कार का भागी होगा, ऐसा अत्याचार नहीं होना चाहिए। जातियों की मानी हुई योग्यता से व्यवसाय बँधा न रहना चाहिए उन्हें प्रत्येक व्यक्ति के प्रकट गुणों पर आधारित होना चाहिए। इससे योग्य व्यक्तियों के उचित कार्य में लगकर राष्ट्रकार्य अति दक्षता से करने की संभावना अधिक रहती है। डॉ. अंबेडकर महार जाति के थे, जो मुख्यतः मृत पशुओं का चमड़ा खींचने का काम करती है | डॉ. अंबेडकर वही कार्य करते रहने को बाध्य होते तो देश एक उच्च विधिवेत्ता और राजनीति के महापंडित से वंचित रह जाता।[10]
3. **स्पर्शबंदी:** यह तीसरी बेड़ी तोड़कर जन्मजात अस्पृश्यता का समूल नाश करना चाहिए। अस्पृश्यता मात्र आरोग्य के संदर्भ मे प्रयोग की जानी चाहिए। अस्पृश्य जाति की अस्पृश्यता तो केवल मानी हुई, मानवीयता पर कलंक है, वह तो तत्काल नष्ट होनी चाहिए। केवल इस एक सुधार के कारण करोड़ों हिंदू बांधव अपने राष्ट्र के साथ एक-जान होकर समा जाएँगे।[11]
4. **समुद्रबंदी:** यह चौथी बेड़ी काटकर परदेश-गमन खुला किया जाना चाहिए | परदेश-गमन को पापकर्म मानने की मूढ़ता जिस दिन या जिस अवधि में हमारे सिर चढ़ी, उसी दिन या अवधि में हमारा विशाल हिंदू राष्ट्र, जो मेक्सिको से मिस्र तक फैला हुआ था, परस्पर संपर्क से वंचित हो गया। विदेश व्यापार पूरा डूब गया, नौसैनिक बल भी डूबा। विदेशी शत्रु समुद्र पारकर हमला करने में समर्थ हो सके। इसके पूर्व ही इस बंधन को कुल्हाड़ी से काटा जाना आवश्यक था। विदेशी विद्याओं: का संजीवनीहरण दुष्कर हो गया। आज भी जो लाखों हिंदू देश-विदेश में बसे हुए हैं, उनसे यदि संबंध अभंग न रखे गए तो वे हिंदू संस्कृति एवं हिंदू धर्म के मजबूत बंद टूट जाएँगे और वे भी हमसे दूर हो जाएँगे तथा अहिंदुओं के पेट में समाकर उनका बल बढ़ाएँगे। हजारों धर्मोपदेशक, हिंदू संगठक, हिंदू व्यापारी तथा वीर छात्रों की बड़ी संख्या विदेश में बसते और आते-जाते रहनी चाहिए।[12]
5. **शुद्धिबंदी:** यह पाँचवीं बेड़ी तोड़कर पूर्व में परधर्म में गए या परधर्म में ही जनमे अहिंदुओं को हिंदू धर्म में समा लेने की कोशिश करनी चाहिए। इतना ही नहीं अपितु उन्हें हिंदू राष्ट्र में ममता से और समानता से संव्यवहार कर आत्मसात् कर लेना चाहिए। मुसलमान ईसाइयों में हिंदू स्त्री-पुरुष धर्मांतरित होकर जाते ही जैसे पानी के समान मिल जाते हैं वैसे ही हम शुद्धिकृतों को समाज में आत्मसात् कर लें तो दस-बीस वर्षों के अंदर एक करोड़ अहिंदू लोग शुद्ध होकर हिंदू धर्म में आ सकते हैं।[13]
6. **रोटीबंदी:** इसी के लिए रोटीबंदी की छठी बेड़ी को भी तत्काल तोड़ना चाहिए। यदि यह एक बेड़ी तोड़ी गई; खाने से जाति नष्ट होती है, धर्म डूबता

है मूर्खतापूर्ण राष्ट्रघातक एवं घृणा भाव छोड़ दें तो अन्य सब बेड़ियाँ एकदम टूट जाएँगी। खाना-पीना वास्तव में वैद्यकशास्त्र का विषय है। वैद्यक दृष्टि से जो आरोग्यकर वही भोज्यान्न। किसी भी व्यक्ति के साथ खाने या पीने में हानि नहीं। उससे जाति नष्ट नहीं होती, धर्म नहीं डूबता। जाति रक्तबीज में होती है, भात के भगौने में नहीं। धर्म का स्थान हृदय है, पेट नहीं।[14]

7. बेटीबंदी हिंदू राष्ट्र के टुकड़े-टुकड़े करने वाली यह सातवीं स्वदेशी बेड़ी है। यह भी टूटनी चाहिए। गुण, शील, प्रीति अनुरूप हों तथा सृजन दृष्टि से उन्नततर संतति होने में बाधक न हो तो हिंदू जाति के वर-वधू से विवाहबद्ध होने में जन्मजात जाति का कोई बंधन रुकावट न हो। ऐसे विवाह का बहिष्कार न किया जाए, उलटे उसका सम्मान हो।[15]

उनका मानना था की वास्तव में मानव धर्म ही हिंदू धर्म की परम सीमा और परिपूर्णता है। उपर्युक्त सात स्वदेशी बेड़ियाँ, जो हमने ही अपने पैरों में डाल रखी हैं और जिन्हें खोलना आज भी अपने ही हाथ में है, उन्हें तोडते ही पोथीजात जातिभेद समाप्त हो जाएगा | मूलभूत गुण न होते हुए भी जाति में जन्म के कारण विशिष्ट जातीय अधिकार या विशिष्ट हानि किसी के भी हिस्से में नहीं आनी चाहिए। पोथीजात जातिभेद के प्राणघातक लपेटों को तोड़-फोड़कर एक बार भी हिंदू राष्ट्र को संगठित शक्ति से हाथ-पैर खुले हो जाएँगे तो जिस बाह्य आपत्ति ने, जिन विदेशी बेड़ियों ने आज हमें कसकर रखा है, बाँधकर रखा है उस संकट से भी पलटकर टक्कर लेने के लिए अपना राष्ट्र आज की अपेक्षा सौ गुना अधिक शक्ति से भिड़ने में सक्षम हो जाएगा।[16]

सावरकर ने इन बेड़ियों पर तीखा हमला किया को जो हिन्दू समाज को खोखला कर रही थी। उन्होंने कहा "जब मैं यह कह कर किसी का स्पर्श करने से इनकार करता हूं कि वह किसी विशेष जाति में पैदा हुआ है, परंतु कुत्तों व बिल्लियों के साथ खेलता हूं, उस समय मैं मानवता के विरुद्ध सबसे जघन्य अपराध करता हूं। अस्पृश्यता का उन्मूलन केवल इसलिए जरूरी नहीं कि यह हमारे ऊपर थोपी गई है बल्कि इसलिए भी कि धर्म के किसी भी पक्ष पर विचार करते हुए इसे न्यायसंगत ठहराना असंभव है। अत: इस प्रथा को धर्म के एक आदेशानुसार समाप्त किया जाना चाहिए।"[17] सावरकर ने कहा, 'उठो और इससे फर्क नहीं पड़ता कि दूसरे ऐसा करें या न करें, इसी क्षण संकल्प लें कि जिस हाथ से आप मेरी बिल्ली और कुत्ते को छूते हैं, उसका उपयोग धर्म में अपने तथाकथित अस्पृश्य भाई को छूने के लिए करेंगे, ऐसा नहीं करने पर आप भूखे रहेंगे... किसी अस्पृश्य भाई को सरेआम छूकर दुनिया को दिखा दो कि जहां तक तुम्हारा सवाल है, तुमने हिन्दू जाति को छुआछूत के पाप से मुक्त करने का वरदान प्राप्त कर लिया है! अपने घर को तथाकथित अछूतों के लिए उस हद तक खोल दो जिस हद तक आप जाति के हिंदुओं के लिए करते हैं। जिनके पास किराए पर घर हैं, उन्हें अछूतों और सवर्ण हिंदुओं के साथ समान रूप से व्यवहार करना चाहिए; जिनके पास कुएं हैं, उन्हें अछूतों और सवर्ण हिंदुओं के लिए समान रूप से खोल देना चाहिए... संक्षेप में, एक भी दिन ऐसा न गुजरें जब आप सार्वजनिक रूप से अछूत के साथ वैसा व्यवहार न करें जैसा कि आप एक जाति के हिंदू के साथ करते हैं"[18] सावरकर ने स्पष्ट रूप से अछूतों के अधिकारों का समर्थन किया। उन्होंने कहा, "अछूतों को सार्वजनिक स्थानों पर पानी खींचने और सार्वजनिक मंदिरों में प्रवेश करने की अनुमति देने की मांग बेहद मामूली और उचित है। सभी महत्वपूर्ण पवित्र स्थानों, मंदिरों, पवित्र और ऐतिहासिक स्थलों को सभी हिंदुओं के लिए समान नियमों के साथ खुला होना चाहिए, चाहे वे किसी भी *वर्ण* या जाति के हों।[19] यद्यपि उन्होंने रत्नागिरि में पतित पावन मंदिर स्थापित किया जो सभी हिन्दुओ के समान रूप से खुला हुआ था परंतु सावरकर का विचार था की सम्पूर्ण देश का प्रत्येक मंदिर प्रत्येक हिन्दू के लिए खुला होना चाहिए। नए मंदिर की स्थापना केवल उस दिशा मे प्रथम प्रयास के रूप मे थी। उन्होंने देश के प्राचीन मंदिरों के पुजारियों को कहा की वे समझदारी दिखते हुए उन मंदिरों के द्वार प्रत्येक हिन्दू के लिए खोल दे।[20] इसी के साथ सावरकर ने यह भी जाना की सामूहिक भोजन से भी अस्पृश्यता मे लोगों का गहरा विश्वास मिटाया जा सकेगा इसलिए वे किसी भी धार्मिक या सामाजिक प्रसंग पर सामूहिक भोजन को बढ़ावा देते थे। उन्होंने अस्पृश्यता निवारण पर दो कारणों से ध्यान केंद्रित किया था। पहला तो यह की वह मानवता के विरुद्ध घोर पाप था दूसरा यह की अगर अस्पृश्यता की सिद्धांत पर ही कुठाराघात किया जाए तो जाति व्यवस्था अपने आप ही कमजोर हो जाएगी तथा जाती के बंधन तोड़ना आसान हो जाएगा। 1931 मे 22 फरवरी को सावरकर ने पतितपावन मंदिर मे मुंबई प्रदेश अस्पृश्यता निवारण सम्मलेन आयोजित किया। उन्होंने स्वयं उसकी अध्यक्षता की तथा अपने अध्यक्षीय भाषण मे जोर दे कर कहा की "सभी हिन्दुओ के लिए खुले रहने वाले नए मंदिर का निर्माण पहले से ही विद्यमान हिन्दू मंदिरों के द्वार सबके लिए खोलने की दिशा मे पहला कदम है।" स्पष्ट है कि सावरकर अस्पृश्यता निवारण के प्रश्न को एक सम्पूर्ण प्रश्न मानते थे तथा उसके निवारण के लिए कोई भी पद्धति व साधन प्रयोग मे लाने के लिए तयार थे।[21] सावरकर ने लिखित रूप में सामाजिक सुधार और तर्कवाद पर अपने विचार रखे। इसमें उन्होंने विभिन्न साहित्यिक रूपों का उपयोग किया। अस्पृश्यों के देवदर्शन से ईश्वर भ्रष्ट होता है यह उनकी मान्यता है। जिस जाति में तत्त्वज्ञान का उदय हुआ है, ऐसा प्रचार विश्व भर में करनेवाली ब्राह्मण जाति को इस प्रश्न पर चर्चा करनी पड़ी, (मुंबई की ब्राह्मण संस्था ने अपनी २८ अगस्त को सभा में पारित एक प्रस्ताव में कहा कि गणेशजी के सामने अस्पृश्य बंधुओं के मिलन का कार्यक्रम रखा जाना चाहिए) यही अत्यंत लज्जाजनक प्रसंग है। जिसे ब्रहाज्ञन प्राप्त हुआ है वही ब्राह्म कहलाता है। फिर जिसे ब्रह्मज्ञान प्राप्त हो चुका है उसी के, भक्तों के दर्शन करने से ईश्वर भ्रष्ट हो जाता है--यह कहना किसी सुंदर आँखोंवाले व्यक्ति के दिन को रात मानना जितना हास्यास्पद है, उतना ही हास्यास्पद यह कथन भी है।[22] रत्नागिरी में अपनी नजरबंदी के दौरान, उन्होंने '*जत्युच्छेदक निबंध*' (जाति उन्मूलन पर निबंध), '*विद्यानिष्ठ निबंध*' (विज्ञान समर्थक निबंध) और '*क्षकिरणे*' (एक्स रे) लिखी। उन्होंने '*समाज चित्रे*' (समाज के चित्र) नामक लघु कथाओं का एक संग्रह भी लिखा। उनका नाटक '*उषाप*' (एक अभिशाप का मारक) अस्पृश्यता, महिलाओं के अपहरण, *शुद्धि* और रूढ़िवादियों के दोहरेपन से संबंधित है। हालांकि सावरकर एक महान प्रतिष्ठित कवि थे, लेकिन उन्होंने मंदिर प्रवेश जैसे विशिष्ट अवसरों पर बहुत साधारण कविताओं को लिखना अपनी गरिमा के नीचे नहीं समझा! सामाजिक सुधार पर सावरकर की कविताओं की प्रचारक होने के कारण आलोचना की गई है। हालाँकि, ये कविताएँ उनके दिल की गहराई से लिखी गई थीं। रत्नागिरी में सावरकर के सहयोगियों में से एक एनएस बापट एक प्रत्यक्षदर्शी थे जब सावरकर ने 1931 में अपनी कविता "*माला देवाचे दर्शन घो द्या, डोले भारुन देवास माला पाहु दिया*" ("मुझे भगवान की एक झलक देखने दो, मुझे भगवान को अपने दिल की सामग्री के लिए देखने दो") की रचना की थी। वे लिखते हैं कि सावरकर ने जब इस कविता की रचना की थी तो उन्होंने कम से कम कुछ आँसू बहाए होंगे।[23] सन 1920 अंडमान से लिखे एक पत्र में सावरकर ने लिखा, "जैसे मुझे लगता है कि मुझे हिंदुस्तान पर विदेशी शासन के विरुद्ध विद्रोह करना चाहिए, वैसे ही मुझे लगता है कि मुझे जातिगत भेदभाव और छुआछूत के विरुद्ध भी विद्रोह करना चाहिए। सावरकर ने 1937 में बिना शर्त रिहाई के बाद सामाजिक सुधार के लिए अपना अभियान जारी रखा। हिंदू महासभा के अध्यक्ष के रूप में उनकी यात्राएं पूर्व-अछूतों के घरों की यात्रा के बिना कभी पूरी नहीं होती थीं। वह गणेश उत्सव में केवल इस शर्त पर व्याख्यान देते थे कि ये व्याख्यान अछूतों के लिए खुले होंगे। 1924 में, उन्होंने भावुक होकर घोषणा की, "मुझे विश्वास है कि मैं अस्पृश्यता के उन्मूलन को देखने के लिए जीवित रहूंगा। मेरी उत्कृष्ट इच्छा है कि मेरे मरने के बाद मेरे मृत शरीर को सभी जाति के व्यक्ति हाथ लगाए वे सभी मेरे शरीर का अंतिम संस्कार करें तभी मेरी आत्मा को शांति मिलेगी"।[24] वास्तव में, सामाजिक सुधार के लिए सावरकर का उत्साह मानवतावाद में उनके स्थायी विश्वास से उपजा था। उन्होंने सामाजिक क्षेत्र में अपने विचारों को जहाज से समुद्र में अपने शानदार भागने से भी अधिक महत्वपूर्ण माना। सामाजिक क्षेत्र में उनकी गतिविधियाँ सशस्त्र संघर्ष में उनके कारनामों से कम क्रांतिकारी नहीं थीं।[25]

सुप्रसिद्ध चारित्रकार धनंजय कीर ने ठीक ही कहा है "गांधी एक समाज सुधारक थे जबकि सावरकर तथा अंबेडकर सामाजिक क्रांतिकारी थे। सुधारक पुराने ढांचे में सुधार करता है जबकि क्रांतिकारी उसे तोड़कर नवनिर्माण करता है।"[26]

राजनैतिक दर्शन

सावरकर के राजनीतिक विचार स्वतंत्रता संग्राम और भारत के विकास के लिए कुछ हद तक विचित्र माने जाते थे। सावरकर का दर्शन वैचारिक और राजनीतिक शब्दावली में वर्गीकृत करना आसान नहीं है। भारतीय समाज के रूपांतरण पर उनके सामाजिक और राजनीतिक विचारों में जो मूल दार्शनिक सिद्धांत दिखाई देते हैं, वे न तो पूरी तरह से विशिष्ट थे और न ही पूरी तरह से समावेशी। वे न तो उदारवादी थे, न ही समाजवादी, और किसी भी विशेष वैचारिक स्कूल या 'ग्रैंड थ्योरी' से वे कभी बंधे नहीं रहे। उनके अज्ञेयवाद और धर्म के रणनीतिक प्रयोग को देखते हुए उन्हें 'धार्मिक' या 'धर्मनिरपेक्ष' के पश्चिमी दृष्टिकोण से वर्गीकृत करना वास्तव में कठिन है। इसके बावजूद, यह कहा जा सकता है कि सावरकर को 'पाश्चात्य दर्शन' के प्रति विशेष झुकाव था, और वे मानवतावाद से प्रभावित थे। उनके विचारों में तर्कवाद, धर्मनिरपेक्ष दृष्टिकोण, वैज्ञानिक भौतिकवाद, और मानवतावादी नैतिकता व सार्वभौमिक मूल्यों को एक प्रगतिशील और विकसित समाज की नींव माना गया। अपने समय में ही, सावरकर के दार्शनिक विचारों को रूढ़िवादियों और परंपरावादियों के लिए अत्यंत उग्र और असहजकारी माना गया, वहीं मध्यमार्गियों को वे चरमपंथी लगे, और चरमपंथियों को वे मध्यम दिखे। साधारण समझ रखने वाले कई लोगों ने उनके सामाजिक और राजनीतिक विचारों को अव्यवहारिक और खतरनाक माना — न केवल हिंदू समाज की स्थिरता के लिए, बल्कि समूचे भारतीय समाज के लिए भी।[27] सावरकर ने "सांस्कृतिक राष्ट्रवाद" का सिद्धांत प्रस्तुत किया, जो कि उस समय के मुख्यधारा के राष्ट्रवादी नेताओं द्वारा प्रतिपादित "भौगोलिक राष्ट्रवाद" के विपरीत था। सावरकर अपनी पुस्तक हिन्दुत्व मे लिखते है: संस्कृति किसे कहते हैं ? संस्कृति मानवी मन का आविष्कार है। 'संस्कृति' का अर्थ है मानव द्वारा इस भौतिक सृष्टि पर किए गए संस्कारों का इतिहास | राष्ट्र की संस्कृति का इतिहास उसके विचारों, आचारों तथा उपलब्धियों का इतिहास होता है। वाङ्मय तथा कलाओं से राष्ट्र की वैचारिक ऊँचाई की कल्पना की जा सकती है, इतिहास तथा सामाजिक रीति-रिवाजों, उनके आचारों, पराक्रम तथा दिग्विजयों की जानकारी प्राप्त होती है इन सबमें से मनुष्य को अलग नहीं दिखाया जा सकता, वह तो राष्ट्र की प्रत्येक उपलब्धि का अंग होता है।[28] सावरकर का राजनीतिक लक्ष्य भारत की संपूर्ण और पूर्ण स्वतंत्रता प्राप्त करना था। जैसे मैज़िनी ने "मानवता की एकता" को अपना दीर्घकालिक राजनीतिक लक्ष्य बताया था, वैसे ही सावरकर ने भी इसे अपने विचारों का मूल उद्देश्य बताया। उनके व्यक्तित्व और चिंतन की विशिष्टता ने उन्हें बीसवीं सदी के प्रारंभिक दशकों में उनके साहसिक राजनीतिक कार्यों के माध्यम से अमर प्रसिद्धि दिलाई। वास्तव में, सावरकर ने 'मित्र मेला' के सदस्यों द्वारा व्यक्त विचारों को एक सुव्यवस्थित रूप में प्रस्तुत किया, जिसमें कहा गया था कि भारत का तत्कालीन लक्ष्य किसी भी कीमत पर राजनीतिक स्वतंत्रता प्राप्त करना होना चाहिए। अनेक भारतीय राष्ट्रवादियों ने यह विचार रखा था कि भारत की मुक्ति एशिया के पुनर्जागरण की पूर्वशर्त है, और इसे मानवता के व्यापक हित में शीघ्र प्राप्त करना चाहिए। किंतु केवल सावरकर ही ऐसे व्यक्ति थे जिन्होंने स्पष्ट रूप से और जोर देकर भारत की संपूर्ण और तत्काल स्वतंत्रता की मांग की। सावरकर का मानना था कि भारतवासियों की वास्तविक पहचान तभी पुनः प्राप्त की जा सकती है जब भारत के गौरवशाली अतीत को पुनर्जीवित कर 'हिंदू राष्ट्र' की स्थापना की जाए। अतः उनका राजनीतिक दर्शन एक विशिष्ट वैचारिक स्वरूप के रूप में सामने आया, जिसमें विशेष रूप से एक भूभाग में रहने वाले हिंदू समुदाय की एकरूपता और सांस्कृतिक आधार पर राष्ट्र निर्माण की इच्छा निहित थी।[29] गांधीजी और डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन जैसे लोगों के विचारों में जहाँ हिन्दू धर्म की परंपरा पर विशेष बल था, वहीं सावरकर ने 'हिंदुत्व' की एक अलग और वैचारिक अवधारणा प्रस्तुत की, जो हिंदू पुनरुत्थानवादी आंदोलनों के क्रांतिकारी तत्वों से प्रभावित थी। हिंदुत्व की विचारधारा ने देश की राजनीतिक-सांस्कृतिक संरचना के पुनर्निर्माण के लिए एक व्यापक खाका प्रस्तुत किया, जिसमें हिंदुओं को राष्ट्रीय मामलों में पूर्ण वर्चस्व दिलाने का उद्देश्य था। यह विचारधारा सावरकर की उस दृढ़ आस्था को दर्शाती है कि भारत को एक हिंदू राष्ट्र के रूप में देखा जाना चाहिए, और इसके लिए हिंदू धार्मिक-सांस्कृतिक परंपराएं ही सबसे उपयुक्त आधार हैं। सावरकर ने यह प्रश्न उठाया कि कौन हिंदू है? इसके उत्तर में उन्होंने 'हिंदुत्व' की अवधारणा राखी, उन्होंने कहा कि जो व्यक्ति इस भारतभूमि सिंधु से समुद्र तक फैली हुई को अपनी पितृभूमि और पवित्र भूमि मानता है, वही हिंदू हो सकता है।[30] भौगोलिक रूप से, एक हिंदू वह है जो सिंधु और ब्रह्मपुत्र नदियों के बीच, और हिमालय से कन्याकुमारी तक फैले इस भूखंड को अपना मानता है। सावरकर ने यह भी कहा कि इस क्षेत्र की संस्कृति, परंपरा और भावना से गहराई से जुड़ा होना ही हिंदुत्व की पहचान है। हिंदुत्व की विचारधारा का मूल लक्ष्य "हिंदू एकता" था। यह एक राजनीतिक संरचना थी जिसका आधार हिंदुओं की सांस्कृतिक विरासत थी। सावरकर का मानना था कि यद्यपि हिंदुओं में बाह्य विविधताएँ हैं, परंतु भीतर से वे ऐतिहासिक, सांस्कृतिक, धार्मिक, सामाजिक और भाषायी रूप से एकजुट हैं, जो सदियों के सामूहिक जीवन के कारण संभव हुआ। उनकी दृष्टि में एक राष्ट्र वह होता है जहाँ एक विशिष्ट भूभाग में रहने वाले लोग सांस्कृतिक, नस्लीय और धार्मिक रूप से एकसमान होते हैं। और चूँकि हिंदुओं में ये विशेषताएँ विद्यमान हैं, अतः वे निःसंदेह एक "हिंदू राष्ट्र" का निर्माण करते हैं।[31]

सावरकर की मानवतावादी सोच और स्वतंत्रता की परिभाषा

वीर सावरकर की सोच दान, परंपरा या धर्म पर आधारित नहीं थी, बल्कि वह वैज्ञानिक दृष्टिकोण, तर्क, समानता और स्वतंत्रता जैसे मूल्यों पर आधारित थी। उनके विचारों का केंद्रबिंदु यह था कि स्वतंत्रता और समानता—दोनों ही मानव जीवन के लिए अनिवार्य और समान रूप से मूल्यवान हैं। स्वतंत्रता की उनकी अवधारणा केवल व्यक्ति की आज़ादी तक सीमित नहीं थी, बल्कि वह पूरे समाज की सामूहिक स्वतंत्रता को प्राथमिकता देते थे। इस सोच पर उन्होंने इतालवी विचारक मैज़िनी के विचारों का प्रभाव स्वीकार किया, जिनका मानना था कि मध्ययुगीन गणराज्य (कम्यून) में स्वतंत्रता का वास्तविक स्वरूप पाया जाता है, जहाँ संपूर्ण समुदाय की स्वतंत्रता महत्वपूर्ण होती है, न कि केवल व्यक्तियों की। मैजिनी की जीवनी लिखते हुए सावरकर कहते है कि विश्व में आज तक जितनी भी राज्यक्रांतियाँ हुई, उन सभी में इटली की राज्यक्रांति में उदात्त, पवित्र वृत्तियाँ चरम सीमा पर हैं। स्वदेशाभिमान की ज्योति इतनी प्रज्वलित हो गई थी और प्रत्येक देशभक्त व्यक्तिगत सुख-सुविधा के प्रति इतना तटस्थ था कि स्वदेश के हितार्थ अपना सबकुछ समर्पित करने की होड़ लगी हुई थी। विदेशी प्रशासन यह चैतन्य दबाने के लिए भयंकर यंत्रणा दे रहा था, उन यातनाओं में देशप्रेमियों के झुंड-के-झुंड कुचले जा रहे थे, तथापि प्रतिवर्ष प्रक्षोभ का उफान इतना विलक्षण एवं अबाध था कि अंत में साठ वर्षों से अधिक काल तक . लड़ते-लड़ते इन जुझारू एवं चीमड़ वृत्ति के देशवीरों ने यश प्राप्त किया। इतिहास को भी इस सत्य को स्वीकार करना पड़ा कि इन सभी महत्कृत्यों से तथा महनीय नररत्नों से अलंकृत अन्य राज्यक्रांति आज तक नहीं हुई है । इटली की इस राज्यक्रांति में सदगुणों का जो इतना चरम उत्कर्ष हुआ, उसका मुख्य कारण यह है कि यह राज्यक्रांति व्यक्तिगत लोभ के लिए नहीं हुई थी, उसकी नींव अत्यंत उन्नत एवं महान् तत्त्वों पर आधारित थी। ' महान् क्रांतियाँ तलवार से अधिक तत्त्वों से संपन्न होती हैं।' 'खड्ग के बिना तत्त्वों की विजय नहीं होती--यह भी एक दुःखद सत्य है और इसीलिए इटली ने खड्ग उठाया।' परंतु "उस खड्ग की नोंक पर यदि सत्य का अधिष्ठान नहीं होता तो उस खड्ग को वह स्पर्श भी नहीं करती।' जिन तत्त्वों पर उस पवित्र स्वतंत्रता संग्राम की नींव रखी गई थी, उन तत्त्वों का पाठ सबसे पहले मैझिनी ने इटली को पढ़ाया।[32] सावरकर भौतिकवादी और स्वार्थी व्यक्तिवाद के विरोधी थे—चाहे वह किसी दर्शन, धर्म या राजनीतिक विचारधारा से प्रेरित हो। उन्होंने जेरमी बेंथम के उपयोगितावाद की भी आलोचना की, जो केवल सुख-दुख के गणित पर आधारित था और राष्ट्रीय हितों की अनदेखी करता था। उनके अनुसार, सच्ची स्वतंत्रता वही है जो व्यक्तिगत अधिकारों के साथ-साथ सामाजिक और राष्ट्रीय दायित्वों को भी संतुलित करे। वह मानते थे कि राष्ट्र के प्रति कर्तव्य निभाए बिना स्वतंत्रता अधूरी है।[33]

सावरकर केवल वैज्ञानिक दृष्टिकोण के पक्षधर नहीं थे, बल्कि वे मानवतावाद और सार्वभौमिक भाईचारे के पक्ष में भी खड़े थे। उनका मानना था की सारी मनुष्य जाति का केवल एक ही ध्येय होना चाहिए एक राष्ट्र, पृथ्वी ही एक देश ओर मानवता। उन्होंने स्पष्ट रूप से कहा कि राष्ट्रवाद केवल एक पड़ाव है, अंतिम लक्ष्य मानवता का एक साझा राज्य है—जहाँ पूरी धरती मातृभूमि हो और पूरी मानव जाति एक राष्ट्र।[34] इसमें सभी को समान अधिकार और कर्तव्य प्राप्त हों। उन्होंने यह

भी जोर दिया कि किसी भी देश को अगर स्वतंत्रता से वंचित रखा गया तो वह मानवता के विकास में अपना योगदान नहीं दे सकता। विदेशी शासन, जो करोड़ों लोगों के आत्मसम्मान और विकास को रोकता है, वह सिर्फ एक राजनीतिक अपराध नहीं, बल्कि मानवता के खिलाफ अपराध है।

निष्कर्ष

वीर सावरकर का सामाजिक एवं राजनैतिक दर्शन गहरे विमर्श और साहसिक विचारों से भरा हुआ था। उन्होंने सामाजिक बुराइयों पर प्रहार किया, हिंदू समाज को संगठित करने का प्रयास किया और भारतीय राष्ट्रवाद को एक विशिष्ट सांस्कृतिक स्वरूप प्रदान किया। उन्होंने प्राचीन सीमाओं और वेद, धर्मशास्त्रों के बंधन से मुक्त होकर, भारत के स्वतंत्रता संग्राम में अपने विचारों के माध्यम से नए मार्गों का निर्माण किया। उन्होंने केवल परंपराओं का अनुकरण न करते हुए, स्वयं की स्वतंत्र और तर्कसंगत सोच को अपनाया। उन्होंने समाज के पिछड़ेपन, रूढ़ियों और अंधविश्वासों के विरुद्ध आवाज़ उठाई। समाज में व्याप्त जातिभेद, अस्पृश्यता और धार्मिक कट्टरता को समाप्त करने हेतु वे जीवनभर संघर्ष करते रहे। उनके विचारों की तेजस्विता, और विचारों की स्पष्टता आज भी मार्गदर्शन करती है। उन्होंने कहा कि केवल आज़ादी प्राप्त करना ही उद्देश्य नहीं है, बल्कि उसके बाद समाज में समता, स्वतंत्रता और न्याय की स्थापना करना भी अनिवार्य है। सावरकर ने यह भी कहा था कि जब तक मनुष्य के जीवन में वैज्ञानिक दृष्टिकोण नहीं आता, तब तक समाज का पूर्ण विकास संभव नहीं है। हमारे सभी स्वतंत्रता सेनानियों ने केवल राजनीतिक संघर्ष ही नहीं किया, बल्कि समाजसुधार की दृष्टि से भी महान योगदान दिया। जैसे: तिलक, अगारकर, गोखले, फुले, राजाराम शास्त्री, महर्षि धोंडो केशव कर्वे आदि। और इन्हीं में सावरकर भी थे। सावरकर ने केवल विचारों की क्रांति नहीं की, बल्कि व्यावहारिक जीवन में उसे उतारकर समाज को दिशा दी। वे सच्चे अर्थों में समाजसुधारक थे। उन्होंने अस्पृश्यता जैसी कुरीतियों के खिलाफ संघर्ष किया। "धर्मनिष्ठा, लेकिन अंधश्रद्धा नहीं" यही उनका मंत्र था। उन्होंने सामाजिक विषमता को समाप्त करने का प्रयत्न किया। उन्होंने कहा था कि हमें धर्म की मूल भावना को समझना चाहिए, न कि अंधविश्वासों को। इसी के साथ सावरकर की भारत की परिकल्पना एक ऐसे राष्ट्र की थी जिसमें विश्व राष्ट्रमंडल पर असीम विश्वास हो। उनकी राजनीतिक विचारधारा यह मानती थी कि धरती सभी की साझी मातृभूमि है और मानवतावाद ही मनुष्य का सच्चा देशभक्ति भाव है। लेकिन उनकी भारत माता मानवता को एक विश्व राष्ट्रमंडल में जोड़ने की प्रक्रिया के दौरान कभी दबकर नहीं रहेगी। अंतरराष्ट्रीय राजनीति में सावरकर का भारत विश्व शांति और समृद्धि की स्थापना में सहायक होगा। उनके अनुसार राष्ट्रवाद मानवता और अखिल मानव राष्ट्र की दिशा में उठाया गया एक अनिवार्य कदम है। सावरकर का दृष्टिकोण वैज्ञानिक था तथा वह एक दूरदृष्टि वाले क्रांतिकारी थे। वीर सावरकर एक ऐसे राष्ट्रवादी विचारक थे जिनकी सोच परंपरागत धर्म, दान या रुढ़ियों पर आधारित न होकर वैज्ञानिक दृष्टिकोण, मानवतावाद, तर्क, समानता और स्वतंत्रता जैसे सार्वभौमिक मूल्यों पर आधारित थी। वे स्वतंत्रता को केवल राजनीतिक मुक्ति नहीं, बल्कि समग्र सामाजिक और नैतिक उत्तरदायित्व के साथ देखने वाले विचारक थे। उन्होंने मैज़िनी जैसे क्रांतिकारियों से प्रेरणा लेकर यह स्पष्ट किया कि सच्ची क्रांति तलवार से नहीं, बल्कि उच्चतम सिद्धांतों और आत्मबलिदान की भावना से जन्म लेती है। सावरकर ने राष्ट्रवाद को मानवता की दिशा में एक आवश्यक कदम माना और इस बात पर बल दिया कि जब तक कोई राष्ट्र स्वतंत्र नहीं होगा, तब तक वह विश्व मानवता के उत्थान में योगदान नहीं दे सकता। उनके लिए स्वतंत्रता केवल एक अधिकार नहीं, बल्कि एक कर्तव्य था एक ऐसा कर्तव्य जो व्यक्ति को समाज, राष्ट्र और अंततः संपूर्ण मानव जाति की सेवा के लिए प्रेरित करता है। इस प्रकार, सावरकर का दर्शन न तो संकीर्ण था और न ही केवल राजनीतिक; वह एक सर्वसमावेशी और दूरदर्शी मानवतावादी दृष्टिकोण का परिचायक था, जिसमें भारत की स्वतंत्रता को विश्व मानवता के उत्थान से जोड़कर देखा गया। उनके विचार आज भी हमें यह सोचने को प्रेरित करते हैं कि सच्ची स्वतंत्रता वहीं है जहाँ कर्तव्य, समानता और सार्वभौमिक भाईचारे का संतुलन हो।

संदर्भ सूची

1. जौली अमरदीप, एक सुधारवादी योद्धा-स्वातंत्र्य वीर सावरकर, उत्तिष्ठ भारत May 28, 2024
2. शर्मा, सुरेन्द्र. आज भी प्रासंगिक हैं सावरकर के विचार. दैनिक भास्कर . 30 जून 2008
3. सावरकर समग्र, प्रभात प्रकाशन
4. वीर विनायक दामोदर सावरकर का सामाजिक-सुधार विमर्श -1924-1937
5. अभिनव भारत परिसमाप्ति भाषण, समग्र सावरकर खंड 8, प्रभात प्रकाशन दिल्ली, पृष्ठ 741
6. भावे गोपाल यशवंत, विनायक दामोदर सावरकर, अर्चना प्रकाशन, भोपाल, पृष्ठ 44
7. जाति उच्छेदक निबंध , समग्र सावरकर , खंड 3, प्रभात प्रकाशन दिल्ली, पृष्ठ 479
8. सावरकर वीर, हमारी समस्याएं पृष्ठ संख्या 17-18
9. जाति उच्छेदक निबंध , समग्र सावरकर , खंड 7, प्रभात प्रकाशन दिल्ली, पृष्ठ 479
10. वही पृष्ठ 81
11. वही पृष्ठ 82
12. वही पृष्ठ 82
13. वही पृष्ठ 82
14. वही पृष्ठ 82
15. वही पृष्ठ 83
16. वही पृष्ठ 84
17. महाराष्ट्र प्रांतिक हिंदू सभा, पुणे, 1963-1965, समग्र सावरकर , खंड 3, प्रभात प्रकाशन दिल्ली, पृष्ठ 483
18. हिंदुत्व का प्राण, समग्र सावरकर , खंड 9, प्रभात प्रकाशन दिल्ली, पृष्ठ 171
19. जाति उच्छेदक निबंध , समग्र सावरकर , खंड 7, प्रभात प्रकाशन दिल्ली, पृष्ठ 461
20. भावे गोपाल यशवंत, विनायक दामोदर सावरकर, अर्चना प्रकाशन, भोपाल, पृष्ठ 89
21. भावे गोपाल यशवंत, विनायक दामोदर सावरकर, अर्चना प्रकाशन, भोपाल, पृष्ठ 51-52
22. हिंदुत्व का प्राण, समग्र सावरकर , खंड 9, प्रभात प्रकाशन दिल्ली, पृष्ठ 191
23. बापट एन एस, स्मृतिपुष्पाय, प्रकाशक एनएस बापट, 1979, पृष्ठ 63
24. सावरकर बलराव, हिन्दू समाज संरक्षक सावरकर, वीर सावरकर प्रकाशन मुंबई 1972, पृष्ठ 67
25. वीर विनायक दामोदर सावरकर का सामाजिक-सुधार विमर्श 1924-1937
26. कीर धनंजय, डॉ अंबेडकर लाइफ एण्ड मिशन, प्रकाशन मुंबई 1954 पृष्ठ संख्या 59
27. वॉल्फ ओ सेग्फरीड, विनायक दामोदर सावर्कर्स स्ट्रेटेजिक ऐग्नास्टिसिज़म: ए काम्पाइलैशन ऑफ हिज सोसिओ पॉलिटिकल फिलोसोफी एण्ड वर्ल्डव्यू, हेडेलबर्ग पापर्स इन साउथ एशियन एण्ड कम्पैरटिव पॉलिटिक्स
28. हिंदुत्व का प्राण, समग्र सावरकर , खंड 9, प्रभात प्रकाशन दिल्ली, पृष्ठ 95
29. सावरकर वी डी, 1992 द प्रेज़डेन्शल अड्रेस इन द ऐन्यूअल सेशन ऑफ हिन्दू महासभा, पृष्ठ 46
30. हिंदुत्व का प्राण, समग्र सावरकर , खंड 9, प्रभात प्रकाशन दिल्ली, पृष्ठ 154
31. वही, पृष्ठ 147
32. मैजिनी चरित्र, समग्र सावरकर खंड 8, प्रभात प्रकाशन दिल्ली, पृष्ठ 27
33. विज्ञानिष्ठ निबंध, समग्र सावरकर खंड 7, प्रभात प्रकाशन दिल्ली, पृष्ठ 583
34. सावरकर वीर, हमारी समस्याए, पृष्ठ 4